Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
June 2024 5(6),2396–2399

# STUDY OF FEUDAL SYSTEM OF THE RITIKAAL PERIOD

# रीतिकालीन सामंतीय राज व्यवस्था का अध्ययन

Vikas Kumar [1], Dhanesh Kumar Meena

[1] Research Student, Hindi, Arts Department, Mangalayatan University, Beswan, Aligarh, Uttar Pradesh, India
[2] Research Supervisor, Hindi, Arts Department, Mangalayatan University, Beswan, Aligarh, Uttar Pradesh, India

**Corresponding Author**
Vikas Kumar,
vikasharnaut67@gmail.com

**DOI**
10.29121/shodhkosh.v5.i6.2024.5552

**Funding:** This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

**Copyright:** © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

## ABSTRACT

**English:** The economic structure of the Indian feudal system was based on the exploitation of the working class. Pointing to the pitiable condition of the farmers under it, the writers say that due to the land going into the hands of the grantees, the farmers of that state not only lost their rights over the land but also had to become victims of the practice of leasing through sub-feudalization. Under the practice of sub-feudalization, the owner of the land could give the land to someone else at his will. He could also transfer the land to the farmers working on it. In this way, subordination to new masters presented new areas of exploitation for the farmers. The landlord considered himself to have full authority over the farmers and could make them homeless by releasing them from service at will. This makes it clear that in Indian feudalism, the personal freedom of the farmers had no value. The farmers had become puppets in the hands of their lord feudal lord. Considering the caste system as the basis of this plight of the farmers, it is said that the economic differentiation (depreciation) within the farmer class was partly inherited from the past and it had become stronger due to the caste system. But the increased pressure of the demand for revenue would have increased this economic differentiation even more by making some weaker or more differentiated sections of the farmer class poorer than others.

**Hindi:** भारतीय सामंतवादी व्यवस्था का आर्थिक ढांचा ही मजदूर वर्ग के शोषण पर आधारित था। अपने अधीन किसानों की दयनीय स्थिति की ओर इशारा करते हुए साहित्यकार कहते है कि भूमि के अनुदान भोगियों के हाथों में चले जाने से उस राज्य के किसानों के भूमि विषयक अधिकार तो छिन ही गये साथ ही उन्हें उपसामंतीकरण के द्वारा पट्टे के चलन का शिकार भी बनना पड़ा। उप सामंतीकरण की प्रथा के अंतर्गत भूमि का स्वामी अपनी इच्छा से किसी अन्य को भूमि तो दे सकता था। साथ ही उन पर काम करने वाले किसानों को भी हस्तांतरित कर देता था। इस प्रकार नये-नये स्वामियों की अधीनता किसानों के लिए शोषण के नये क्षेत्र प्रस्तुत करती थी। ग्रहीता किसानों पर अपना पूर्ण अधिकार समझता था एवं इच्छानुसार उन्हें सेवा से मुक्त करके निराश्रय कर सकता था।' इससे यह निश्चय हो जाता है कि भारतीय सामंतवाद में किसानों की अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं था। किसान केवल अपने प्रभु सामंत के हाथ की कठपुतली बन कर रहने लगे थे। किसानों की इस दुर्दशा का आधार जाति व्यवस्था को मानते हुए कहते हैं कि किसान वर्ग को अन्तर्गत आर्थिक विभेदन ;डिपरेशिएशनद्ध अंशतः अतीत से उत्तराधिकार में मिला था और जाति व्यवस्था के कारण वह मजबूत हुआ था। परन्तु राजस्व की मांग के बढ़े हुए दबाव ने किसान वर्ग के कुछ अधिक कमजोर या अधिक भेद तबकों को अन्यों की अपेक्षा दरिद्र बनाकर इस आर्थिक विभेदन में और भी अधिक वृद्धि कर दी होगी।

**Keywords:** Farmer, Sub-Feudal Lord, Ruler, Exploitation, Cattle Rearer, Upper, Bhutvaat Pratyaya, किसान, उपसामंत, शासक, पशुपालक, उपरिकर, भूतवात प्रत्याय, धन्य, हिरण्य, आदि

## 1. प्रस्तावना

सामंतवाद में दो सिद्धांत वर्ग थे, विशेषाधिकार प्राप्त और निम्न वर्ग जो भारी पड़ते रहे। साथ ही, समग्र सर्वहारा वर्ग की स्थिति असाधारण रूप से भयानक थी। इनका जमकर फायदा उठाया गया। इतिहास का एक छात्र, इस अस्थिर परिस्थिति के पीछे के स्पष्टीकरण की जांच करते हुए लिखता है

कि उप-सामंती के चक्र के कारण, भूमि से प्राप्त वेतन कई छोटे टुकड़ों में समाप्त हो गया था। इससे शासक और पशुपालक दोनों की स्थिति समाप्त हो गई और अनजाने में ही दलालों के कब्जे में वित्तीय बल आने लगा।1 हालात ऐसे पहुंचे कि मध्यस्थों की संख्या बढ़ने लगी। इस कारण पशुपालकों को भूमि-शुल्क के बावजूद विभिन्न प्रकार के शुल्कों का भुगतान करना पड़ता था। करों का विवरण डाॅ. कमला गुप्ता के इन शब्दों में देखा जा सकता है ‘करों के बोझ से दबे किसानों की स्थिति दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही थी। किसानों पर लगाये जाने वाले विभिन्न करों में- उदरंग, उपरिकर, भूतवात प्रत्याय, धन्य, हिरण्य, दण्ड दशापराध और उत्पध्यमान दिष्टि मुख्य कर थे। गांवों के किसानों को ये सभी कर देने पड़ते थे। इन सबका परिणाम यह हुआ कि एक वर्ग और ऊँचा उठ गया तथा दूसरा वर्ग और नीचे गिर गया, जिसे एक इतिहासकार अपने शब्दों में व्यक्त करते हंै- ‘‘इन करों की अदायगी से ही बिचैलिये सामंतों की शक्ति बढ़ती रही और उन्होंने गांव के चरागाहों आदि पर अधिकार करना आरंभ कर दिया जिससे किसानों की स्थिति और अधिक निराशाजनक बन गई। यह कहना उचित होगा कि किसानों की दशा का मुख्य कारण उन पर लगाये गए तरह-तरह के करों का बोझ था जिससे वे कभी जीवन भर नहीं उभर सके।2

भारतीय सामंतवाद में शोषण पर आधारित व्यवस्था में उत्पादन के साधनों में किसान एक महत्वपूर्ण इकाई थी जिसका मनमाना शोषण किया जाता था। किसानों की दयनीय स्थिति के विषय में बहुत से विद्वानों ने अपना मत व्यक्त किया है। एक इतिहासकार ने इस विषय में लिखा है कि अनुदत्त क्षेत्रों में किसानों को घाटा इससे भी हुआ कि ग्रामीणों के सामुदायिक अधिकार अनुदान भोगियों के हाथों सौंप दिये जाने लगे। एक बार जब कृषि योग्य जमीन अनुदान भोगी के हाथों चली जाती थी तो उस पर उसका व्यक्तिगत अधिकार हो जाता था और ग्रामीणों के परम्परागत अधिकार उनसे छिन जाते थे, जिससे किसानों की बहुत सी समस्याएं प्रारंभ हो जाती थी। भारत के दो बड़े राज्यों जैसे-‘बिहार और बंगाल में ‘सर्वपीड़ा’ को झेलना किसानों की सामान्य नियति थी। जब राज्य कोई क्षेत्र अनुदान में दे देता था तो अपना यह अधिकार भी छोड़ देता था, जो स्वभावतः ग्रहीता के हाथों चला जाता था। शासक सरदार तो ग्रामीणों से यदा-कदा ही बेगार लेते थे, किन्तु ग्रहीताओं के साथ ऐसी बात नहीं थी। गांव की जमीन तथा अन्य प्राकृतिक साधनों से अधिक से अधिक लाभ उठाना उनका उद्देश्य होता था और इसलिए वे लोगों से बेगार भी कसकर लेते थे।’’ संभवतः बेगार लेना इस समय राजस्व का एक अतिरिक्त साधन था। कामसूत्र में हमें सांमतों द्वारा किसानों एवं उनकी पत्नियों से अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं के लिए बेगार कराने के प्रमाण मिलते हैं ‘‘किसानों की पत्नियों को अपने मालिकों के खेत में निःशुल्क काम करना पड़ता था, जैसे ग्राम प्रधान की कोठी में अन्न रखना, उनके घर में सामान लाना और ले जाना, उनके घर की सफाई और सजावट तथा उनके कपड़ों के लिए रुई, उफन, पटुए याधन से सूत कातना आदि।’’3

सामंतवाद में बेगार प्रथा, सामंतवादी व्यवस्था में किसानों की बुरी दशा का मुख्य कारण बेगार प्रथा थी। बेगार से तात्पर्य ऐसे शारीरिक श्रम से है जो उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के लोगों से लिया जाता है तथा जिसका मूल्य नहीं दिया जाता। यह प्रथा सामंतवाद की विशिष्ट देन है। इस प्रथा के अंतर्गत किसानों एवं श्रमिकों से निःशुल्क काम लिया जाता था। इसके प्रमाण आज भी बिहार और बंगाल में मिलते हैं कि सामंत कुछ दास अवश्य रखते थे। सामंत की महिलाओं की सेवा के लिए विशिष्ट प्रकार के दास-दासियां होती थी और यहां तक कि सामंत दहेज में दासियां भी देते थे। ‘‘हरम की महिलाओं की देख-रेख के लिए विशेष वर्ग के दास रखे जाते थे। ये बहुधा बाल्यावस्था में ही क्रय कर लिये जाते थे और नपंुसक बना दिये जाते थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय सामंतवाद में दासों के शोषण के विभिन्न वर्ग मौजूद थे। अलग-अलग स्थानों के लिए विभिन्न दास वर्ग थे। अतः दास प्रथा सामंतवाद की एक मुख्य समस्या थी जिसमें व्यक्ति के साथ पशु से भी बढ़कर बुरा व्यवहार किया जाता था और यह दास व्यवस्था मध्यकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी।4

सामंतवाद की सीमाओं में अन्य कई मुख्य बिन्दु भी रहे हैं जिनमें दास प्रथा के समान ही जाति व्यवस्था नामक बुरी व्यवस्था का जन्म हुआ। दूसरे शब्दों में समाज में दो मुख्य वर्ग थे एक कुलीन अर्थात उच्च (सामंत) वर्ग तथा दूसरा शूद्र अथवा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग निम्न वर्ग को घृणा की दृष्टि से देखता था, उसे नीचा समझता था। यहां सामंती व्यवस्था में व्याप्त सुदृढ़ वर्ण व्यवस्था का लेबल लगा हुआ था। जाति व्यवस्था के प्रादुर्भाव के कारण अस्पृश्यता को स्थान मिला। दूसरे शब्दों में मध्यकालीन जाति-प्रथा का उद्भव मध्ययुगीन सामंती समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में हुआ। प्राचीन भारतीय दास प्रथा में केवल वर्ण थे, जातियां नहीं किन्तु भारतीय सामंतवाद में ब्राह्मणों का वर्ण ही एक जाति के रुप में जारी रहा। अन्य वर्ग विशिष्ट वर्ण-समुदायों के रूप में अपना आर्थिक महत्व बहुत कुछ खो चुके थे। बदले में, ग्राम समुदाय के अंदर कितनी ही जातियां और उपजातियां पैदा हो गयी जिनमें से प्रत्येक किसी धंधे या या व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करती थी।’ और कुछ जातियां सामंतों ने अपनी विलासिता के लिये बना रखी थी।5

सामंतवाद के विभिन्न व्यवसायों को अपनाने वाले कुलों को भी विभिन्न जातियों के रूप में मजबूत किया गया। इसके बाद मध्ययुगीन समाज अनगिनत पदों और उप-स्थितियों के एक काल्पनिक चक्रव्यूह में बदल गया। प्रत्येक पद या उप-जातियांे के लिए निर्धारित सिद्धांतों का दुरुपयोग करने के लिए, उन्हें उस पद या उप-जातियों से बहिष्कार किया गया था। सामंतवाद के सबसे भयानक प्रभाव को मानव अस्तित्व पर सबसे अच्छे अनुशासन के रूप में देखा गया था और काम के अपरिवर्तनीय सामाजिक विभाजन के आधार पर, प्रत्येक जाति ने अपना अलग हिस्सा ग्रहण किया ताकि पहले निर्माताओं के बीच काम का दुरुपयोग अधिक हो। पुरानी वर्ण व्यवस्था में कोई बुराई नहीं थी, लेकिन स्थायी ढांचे के उदय के साथ, यह भी सामंतवाद के साथ-साथ पनपने लगी। प्राचीन वर्ण व्यवस्था में, अस्पृश्यता नहीं थी, किन्तु जाति प्रथा के आविर्भाव के साथ ही वह भी सामंतवाद के साथ पनपने लगी। सामंती ‘भद्रजन’ शारीरिक श्रम को नीच काम समझते थे और उन जातियों को जो अपनी मेहनत मशक्कत से ही गुजर करती थी, अपने से हीन और अस्पृश्य मानते थे। भारत में यह कहना सही है कि भारतीय शूद्रों की दयनीय स्थिति मुख्य रूप से सामंतवाद के कारण थी। हालांकि यह पहले भी था लेकिन सामंती व्यवस्था में जाति व्यवस्था की पूर्णता देखी जा सकती है। आगे श्री रामविलास शर्मा शूद्रों की स्थिति की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि “शूद्रों का जीवन कुल मिलाकर बहुत कठिन था। उनके अधिकार सामंतों के लिए थे, कर्तव्य अनेक थे। उनके लिए क्रूर दंड की व्यवस्था थी। इस पर यदि कोई ब्राह्मण शूद्र का वध कर दे तो उसे वही प्रायश्चित करना होगा जो उसे बिल्ली, मेंढक, कुत्ते या कौवे को मारकर करना होगा। यहाँ शूद्रों की

वास्तविक स्थिति का प्रमाण मिलता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि सामंतवाद में वर्ग-भेदभाव की असमानता बहुत विकृत रूप में प्रचलित थी जिसने समाज में असमानता को जन्म दिया और यह असमानता मध्यकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।6

हिन्दू धर्म सच्चे अर्थों में सामतंवाद की जरूरतों को उसी प्रकार अभिव्यक्त करता है जिस प्रकार प्राचीन ब्राह्मणवाद में उदीयमान दास प्रथा की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता आया है। वास्तविक वस्तुस्थिति यह थी कि हिन्दू धर्म मूलतः मध्ययुगीन हिन्दू धर्म, सामंतवाद को सुरक्षित रखने में अपनी एक विशेष भूमिका निभाता है। भारतीय धर्म का सामंतीकरण इसी युग में हुआ। ''ब्राह्मणों ने वेदों और पवित्र ग्रंथों को, जिनके वे संरक्षक माने जाते थे, सामंती उच्च वर्गों के अधिकारों और सुविधाओं को सुरक्षित रखने के लिए इस्तेमाल किया।'' और विभिन्न जातियाँ बनाने में धार्मिक ग्रन्थों का प्रयोग किया है। यह कहना गलत नहीं होगा कि मध्यकालीन देश में धर्म उसे स्थिर रखने का स्तंभ था, धर्म से यह विदित होता है कि किस प्रकार भारतीय सामंतवाद ने अपने पैर जमाने के लिए धार्मिक कुप्रथाओं का संरक्षण प्राप्त किया। स्थानीय शासक दूरस्थ क्षेत्रों से कटकर एक ही क्षेत्र तक सीमित होकर रह गए जिसका प्रमाण एक इतिहासकार ने इस प्रकार दिया है- ''ब्राह्मण और उनके संरक्षक दूरस्थ प्रदेशों से कटकर अपने-अपने क्षेत्रों से एकीभूत हो गये। इससे स्थानीय संस्कृतियों का जन्म हुआ। फलतः देश में क्षेत्रीयतावाद का उदय हुआ। और लोग अपने-अपने क्षेत्र को ही अपना राष्ट्र मानने लगे और सामंतवादी कहलाने लगे।'' पूर्वोक्त मत से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामंतवाद में धर्म की आड़ लेकर अनेक ब्राह्मणों एवं पुरोहित सामंतों ने अपने-अपने अलग क्षेत्रों को ही अपना राष्ट्र मान लिया था जिसने क्षेत्रीयता वाद को जन्म दिया। जहां एक ओर इन सामंतों एवं पुरोहितों ने अलगाववाद को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर अपनी सत्ता को स्थिर और चारों तरफ से सुरक्षित करने के लिए भारतीय जनता को आडम्बरों एवं झूठे पाखण्डों में फंसाये रखा। इसके परिणाम स्वरूप, भारतीय समाज में भूत-प्रेत और व्यभिचार जैसी कई कुरीतियां हावी हो गईं। सामंतों के बीच बहुत प्रतिद्वंद्विता थी। जिसके परिणाम स्वरूप जादू-टोना और अन्य गलत तांत्रिक गतिविधियां की जाने लगीं। नकली धार्मिक रक्षकों ने अपने स्वार्थ के लिए धार्मिक शास्त्रों का भी इस्तेमाल किया। सती प्रथा, बाल विवाह, राजा को भगवान मानकर, पुजारियों और राजा के आदेशों की अवहेलना आदि को पाप बताकर धर्म से जोड़ा गया। अज्ञानी लोग इन दुष्चक्रों में फंसकर उनकी बात मानने को मजबूर हो गए।

इसकी नींव को मजबूत करने के लिए भारतीय सामंतवाद में हर क्षेत्र, हर समुदाय और हर जाति के अपने-अपने देवता और रीति-रिवाज थे। उच्च जातियों के देवताओं को अन्य जातियों के देवी-देवताओं से बड़ा नहीं, बल्कि अधिक श्रेष्ठ माना जाता था। भारतीय सामंतवाद में हिंदू धर्म का कोई केंद्र नहीं था, जो भारत के विभिन्न हिस्सों में बसे लाखों हिंदू धर्म के अनुयायियों के दैनिक जीवन और दैनिक गतिविधियों को निर्देशित और नियंत्रित कर सके। लोगों का दैनिक जीवन एक प्रतिष्ठित मंदिर द्वारा प्रतिपादित केंद्रीय नियमों द्वारा शासित नहीं था, लेकिन सामंती प्रभुओं ने इन मंदिरों से अपने कानूनों को चलाना शुरू किया, जो उन परंपराओं, और रीति-रिवाजों द्वारा निर्देशित थे जो उन्हें सामंतवाद को मजबूत करने में मदद कर सकते थे।7 भारतीय सामंतवाद ने तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं और दार्शनिक प्रणालियों को एक नया रूप और रंग दिया। सामंती ब्राह्मण फिरौन ने एक ही सामाजिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए विविध विचारों और विश्वासों को एकीकृत करने का प्रयास किया। इस प्रयत्न में उन्होंने प्राचीन ब्राह्मणवादी सिद्धान्तों और कर्मकाण्डों, मूर्तिपूजा के नव बौद्ध रीति-रिवाजों और सर्वात्मवाद तथा गणचिह्नवाद की आर्यपूर्व कबीली परम्पराओं को बड़ी चतुराई से एक ही सूत्र में पिरो दिया।''

इस प्रकार भारतीय धर्म शक्तिशाली सामंतों के हाथों में आ गया और उसने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए विभिन्न धार्मिक परम्पराओं एव रीति-रिवाजों को जन्म दिया जिसने निम्नवर्ग और नारी वर्ग के शोषण के विभिन्न क्षेत्र प्रस्तुत किये। भारतीय धर्म के नाम पर छोटी-छोटी सुकुमारियों को पति-पत्नी के सम्बन्धों को शुरू होने से पहले ही, पति की मृत्यु होने पर सतीत्व की दुहाई देकर, मृत्यु की चिरनिद्रा में सुला दिया जाता था। दूसरी ओर यह धर्म के रक्षक ब्राह्मण और सत्ता के नशे में मस्त उच्च वर्ग नारी को केवल भोग की वस्तु समझता था। अन्य वस्तुओं के समान नारी भी उसके लिए भोग्य वस्तु थी जिस पर वह अपना अधिकार समझता था। अतः भारतीय सामंतवाद ने ऐसी अनेक कुप्रथाओं को जन्म दिया जो स्वस्थ भारतीय समाज के लिए कलंक थी। यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन 'हिन्दू धर्म भारतीय सामंतवाद की जरूरतों को उसी प्रकार अभिव्यक्त करता था, जिस प्रकार प्राचीन ब्राह्मणवाद उदीयमान दासप्रथा की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता था। दूसरे शब्दों में कहें तो, तत्कालीन हिन्दू धर्म को भारतीय सामंतवाद की आवश्यकताओं का पूरक सामंतवाद ने बना दिया था।8 उसके आचरण एवं मान्यताओं में वृक्षों, पशुओं, भूत-प्रेतों, सवर्णों आदि की पूजा तथा अनेक कर्मकाण्ड हिन्दू धर्म सामंतों के हथकण्डे बन गये थे जो भोली-भाली भारतीय जनता को ठगने और सामंतों के कष्टों आदि को उनकी नियति बताकर भारतीय सामंतवाद को मजबूत कर रहे थे। इन्हीं विश्वासों के कर्मफल के सिद्धान्त ने गहरी जड़े जमा ली। ''सामंतवाद के अंतर्गत कुकर्म और कर्मफल के विश्वास ने और भी गहरी जड़ंे जमा ली।'' जिसके परिणाम स्वरूप जो कुछ हो रहा है वह शोषित जनता के कर्मों का फल है यह विश्वास दिलाया गया। निःसंदेह इस कर्म फल के भोग की मान्यता ने भारतीय समाज में निम्न वर्गों के शोषण को औचित्य ही नहीं प्रदान किया, बल्कि विद्रोही चेतना को हमेशा कुंठित किया और भाग्यवाद को अत्यधिक प्रश्रय प्रदान किया। यह धर्म एवं इसकी मान्यताएं और विश्वासों ने शोषित जनता को एक ऐसी अफीम की गोली दी जिससे वे निद्रा में रहते थे।9 इस दृष्टि से भारतीय सामंतवाद की कमजोरियाँ यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में इतनी दिखाई नहीं पड़ती जितनी अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दू धर्म की आड़ में किस तरह से भारतीय सामंतवाद फला-फूला तभी तो मध्यकालीन भारतीय संतों ने सीधे भारतीय सामंतवाद पर प्रहार न करते हुए इन भारतीय धार्मिक कुप्रथाओं पर प्रहार किया। उन्हें तोड़ा और जनता को धार्मिक अफीम की निद्रा से जगाने का पुण्य कार्य करने का प्रयास किया, लेकिन यह आज तक हो नहीं पाया है।

अंत में कहा जा सकता है कि भारतीय सामंतवाद अपने प्रारम्भिक रूप में आदर्शवादी एवं कुछ गुणों से युक्त रहा होगा। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सामंतवादी प्रथा ने प्रारम्भ में प्रगतिशील भूमिका अदा की जिसमें उत्पादन शक्तियों में बड़े पैमाने पर विस्तार के साथ-साथ संस्कृति, कला, गणित, स्थापत्य कला, साहित्य, ज्योतिष आदि के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की।10 लेकिन यह भी निःसंदेह कहा ही जा सकता है कि भारतीय

सामंतवाद का यह आदर्शवादी रूप धीरे-धीरे अपनी वास्तविक स्थिति में मध्यकाल में आने लगा और उसने अपने को मजबूत बनाने के लिए सत्ता का दुरूपयोग अपने अनुसार करना प्रारम्भ कर दिया।11 जहाँ आम आदमी को एक राजा के अधीन अपने कर्तव्यों का पालन करना होता था, वहाँ स्थानीय सरदारों और सामंतों के अधीन रहने से उसकी स्थिति और खराब हो जाती थी।12 इस समय किसानों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई थी कि उन्हें दासों का जीवन व्यतीत करना पड़ा।13 दिन-रात जमीन पर काम करने के बावजूद किसानों को खाना भी नहीं मिल पाता था, उन्हें तरह-तरह की यातनाएं दी जाती थीं।14 अपने मालिक के यहां जबरन मजदूरी करना और सबसे बुरी बात यह थी कि किसान अपनी जमीन छोड़कर कहीं नहीं जा सकते थे। इससे किसानों की स्थिति दासों से भी बदतर हो गई।15

निष्कर्ष, धार्मिक क्षेत्र में तो भारतीय सामंतवाद अपने पूर्ण रूप से व्याप्त था ही क्योंकि इस समय पण्डित और पुरोहित ही सारा धर्म तंत्र चलाते थे और अपनी निजी अर्थात् सामंती शक्तियों को मजबूत करने के लिए तरह-तरह के अधार्मिक नियम बनाते थे।दूसरे अर्थों में मध्यकाल में, धर्म का पूरी तरह से सामंतीकरण हो चुका था। धर्मशास्त्रों एवं पण्डितों आदि धर्म गुरू केवल सामंतों की सत्ता के दिखावटी रखवाले होकर रह गए थे जिसके परिणाम स्वरूप अनेक धार्मिक मत-मतांतरों एवं गैर-धार्मिक परंपराओं ने जन्म ले लिया और भारतीय जन-साधारण इनकी भूल-भुलैया में उलझ कर रह गया। जनता में यह विश्वास जगाया कि जो हो रहा है वह उनकी किस्मत है, भाग्य है, उनका मानवीय कर्मफल है। इन समस्त परम्पराओं ने एक ओर सामंत वर्ग को गरीब मानव जाति का शोषण करने को नये-नये मानवीय क्षेत्र प्रस्तुत किये, तो दूसरी ओर शोषितों को उनका भाग्य बताकर उनकी भावना को कुंठित किया। इन्हीं धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में विकृतियों के परिणामस्वरूप मध्यकालीन भारतीय भक्ति आन्दोलन उठा जिसमें महत्वपूर्ण भूमिका संत कबीर ने निभाई। उन्होंने सामंतवाद की नींव हिलाने और उसे पूर्णतः विध्वंस करने के लिए तत्कालीन हिन्दू धार्मिक व्यवस्था, जो भारतीय सामंतवाद का आधार स्तंभ थी, उन पर जमकर प्रहार किया। लेकिन सामंतवाद में संत कबीर की भूमिका मूलतः धर्म सुधारक या समाज सुधारक की नहीं थी, वरन् इनकी आड़ में पोषित हुए सामंतवाद पर प्रहार करने की रही थी।

## CONFLICT OF INTERESTS

None.


## ACKNOWLEDGMENTS

None.


## REFERENCES


डॉ. रामविलास शर्मा, हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, पृ0 55
स. एल. वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग 2, पृ0. 55
रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 222
डॉ. रामशरण शर्मा, भारतीय सामंतवाद, पृ0 274
हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, पृ0 61
के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पृ0 217
प्रभुदयाल मित्तल बृज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 0
डॉ. मोतीलाल मैनारिया, डिंगल में वीर रस प्रथम, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सं0 2003
डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी, तुलसी परवर्ती हिन्दी राम काव्य परम्परा का आलोचनात्मक अध्ययन
गोरेलाल तिवारी, बुन्देल खण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्राथम सं.0 1890
कवि मणि पंडित कृष्णदास, बुन्देलखण्ड का इतिहास, खण्ड-3, सन्तोष भवन, स्टेट बैंक छतरपुर प्रथम सं0. 1500
डॉ. भगवान दास गुप्त तथा छत्रसाल बुन्देला, बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा, पुस्तक प्रकाशन तथा विक्रेता आगरा प्रथम संस्करण 1958
डॉ. राजपाल शर्मा, ब्रज भाषा वीर काव्य में समाज चित्रण
डॉ. भगवान दास तिवारी, भूषण साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन
डॉ. राजमल बोहरा, भूषण और उनका साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम सं0 1968